स्वपथगामी

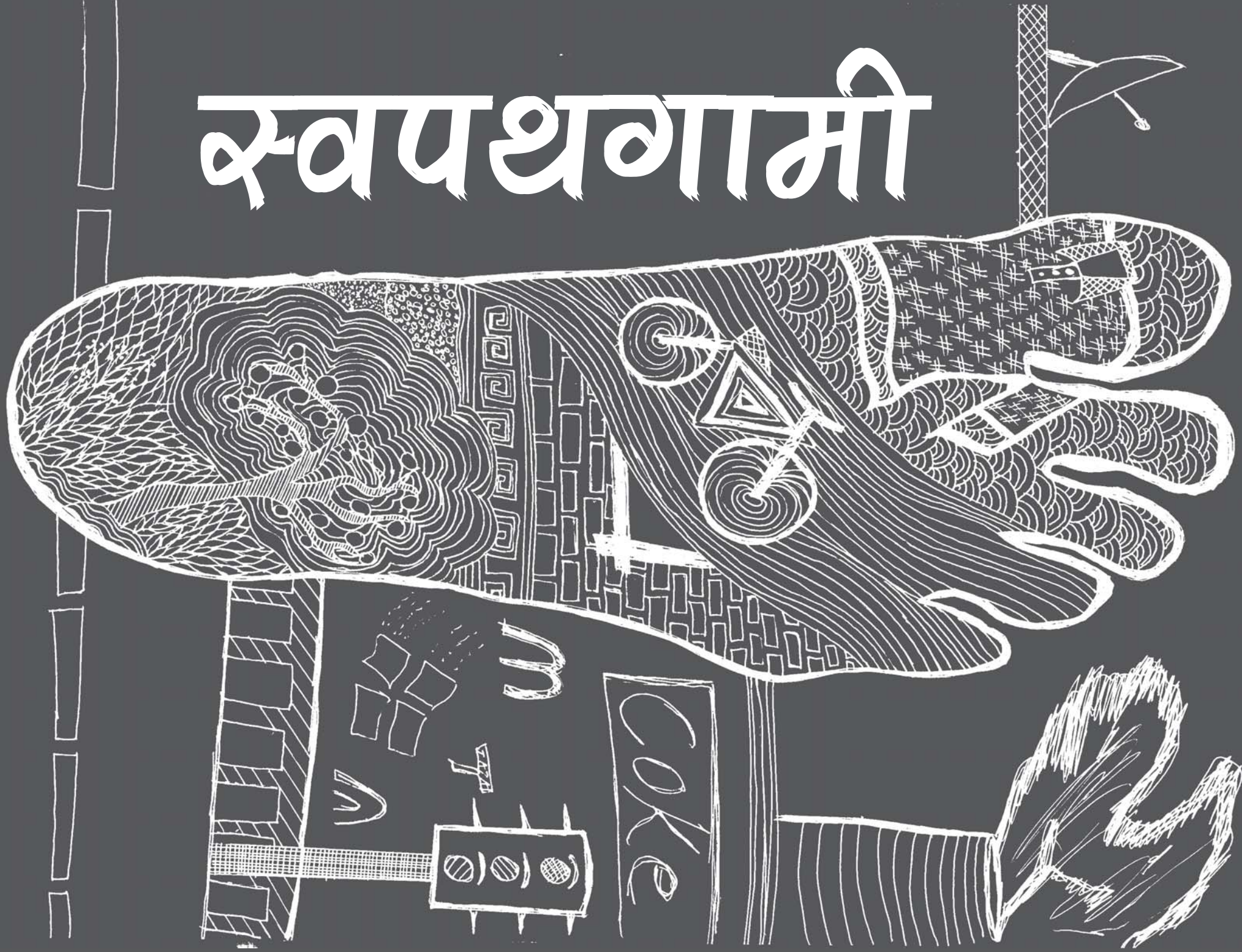

हरित भ्रान्ति बनाम सही क्रान्ति

– बसन्त फुटाणे

बचपन से ही मुझे खेती में रुचि थी। लेकिन स्कूली–कॉलेजी पढ़ाई के कारण इसका ज्यादा मौका बचपन में नहीं मिल पाया। कॉलेज छोड़ने के बाद बाबा आमटे के शिविरों में जाने तथा जयप्रकाश नारायण द्वारा शुरू की गई तरूण शान्ति सेना में शामिल होने का मौका मिला। फिर कुछ समय विनोबाजी के पवनार आश्रम में बिताए। विभिन्न शिविरों, सम्मेलनों के बावजूद भी यह महसूस होता रहा कि कुछ तो महत्त्वपूर्ण है, जो मेरे जीवन में अभी भी छूट रहा है। खेती की जो प्यास बचपन से थी, उसे बुझाने का मौका नहीं मिल रहा था।

1977 में हम रवाळा गॉव में रहने के लिए आ गए। उसी दौरान करूणा के साथ मेरी शादी हुई – पिताजी और बड़े भाई की इच्छा के विरुद्ध। पिताजी तो बाद में राजी हो गए, पर बड़े भाई ने काफी विरोध किया। बड़े भाई के हाथ में सारी खेती थी, इसलिए उन्होंने हम पर आर्थिक दिक्कतें पैदा करना शुरू कर दिया। शादी के बाद हमने खुद खेती करना शुरू किया। बड़े भाई से थोड़ी जमीन तो मिली, लेकिन उस पर खर्च करने के लिए कोई आर्थिक मदद नहीं मिली।

खेती में हमने यह तय किया कि हम अपनी जमीन में रासायनिक खाद और कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं करेंगे। उस समय अमोनियम सल्फेट नामक खाद ज्यादा प्रचलित था और उसके दुष्प्रभाव बहुत थे। इस खाद के तत्काल फायदे तो मिल जाते थे, इसलिए लोग ज्यादा कुछ सोचते नहीं थे। लेकिन इसके दीर्घकालीन असर क्या होंगे, यह सोचने की आदत हमें थी।

शुरूआत के दो–तीन साल हम ऑर्गेनिक खेती करते रहे। उसके बाद हमें फुकुओका की किताब 'एक तिनके से आई क्रान्ति' (one straw revolution) पढ़ने को मिल गई। इस किताब को पढ़ने के बाद खेती के बारे में हमारी समझ बहुत गहरी हुई और हमने प्राकृतिक खेती की शुरूआत की। हालॉकि बहुत सारे प्रश्न मन में थे कि बिना बुआई–जुताई और सिंचाई के खेती कैसे हो सकती है?

अनाज की खेती में तो हम ऑरगेनिक पद्धति को ही अपना रहे हैं, लेकिन हमारा लक्ष्य प्राकृतिक खेती है। वृक्षों, वनौषधियों और सब्जियों की खेती में हम प्राकृतिक खेती का प्रयास कर रहे हैं। मनुष्य हमेशा से ही वृक्षों पर निर्भर रहा है। अनाज की खेती का चलन तो बहुत बाद में शुरू हुआ। और जबसे अनाज की खेती शुरू हुई है, जमीन का दुरूपयोग ज्यादा हुआ है। तो हम इस दिशा में भी कोशिश कर रहे हैं कि अनाज की खेती कम करें और ज्यादा पेड़ लगाएँ, ताकि जमीन पर भार कम हो। जैसे एक उदाहरण लें कि ताड़ के वृक्ष से हमें नीरा मिलती है और नीरा से हम बहुत अच्छा गुड़ बना सकते हैं। गुड़ के लिए हम गन्ने की खेती करते हैं, तो हर साल गन्ना तो जमीन से खींचता रहता है और बदले में जमीन को कुछ मिल नहीं पाता। लेकिन ताड़ का पेड़ तो बड़ा होने के बाद बहुत कम जमीन से लेगा और जितना लेगा, उससे ज्यादा जमीन को लौटाएगा। तो गुड़ के लिए गन्ने के विकल्प में ताड़ के पेड़ लगा सकते हैं।

पेड़ लगाने की दिशा में हमने प्रयत्न किए हैं। हमने महुए के पेड़ लगाए हैं, जो अनाज का एक विकल्प हो सकता है। पुराने लोग तो महुए के फूल–मेवे से रोटी भी बनाते थे। इसके लड्डू भी बनाए जा सकते हैं। इसी तरह हमने लगभग 20 किस्मों के आम के पेड़ लगाए हैं, जो बड़े पैमाने पर होने वाली सन्तरे की खेती का विकल्प हो सकता है। अगर हम अनाज पर 50 प्रतिशत निर्भरता को भी कम कर सकें, तो कृषि के क्षेत्र में सही दिशा में क्रान्ति हो सकती है।

प्राकृतिक खेती में पहली महत्त्वपूर्ण बात है – मिट्टी बचाओ। अपने खेत की जो मिट्टी है, वह बाहर नहीं जानी चाहिए। मिट्टी की ताकत को बनाए रखने के लिए उसे उसी जगह पर रहना चाहिए।

दूसरी चीज है – रिसाइक्लिंग। हमारी जमीन से जो निकलता है, वो वापस उसे लौटाना है। हमारे भोजन के बाद हमारे मल की खाद भी वापस उस जमीन में जानी चाहिए। साथ ही पशुओं का मल–मूत्र भी खेत में वापस जाना चाहिए। जितना हो सके, हम खेत की चीजों को बाहर नहीं निकालें और जो बाहर निकलती भी है, तो उनका पुनः उपयोग किसी न किसी तरह से होना चाहिए।

तीसरी बात है वृक्षों की। हमें अपने खेतों के चारों ओर वृक्ष लगाने पड़ेंगे। वृक्ष लगाने का काम भी हवा की दिशा के अनुसार किया जाना चाहिए। जैसे हमारे यहॉ अकसर उत्तर और पश्चिम की ओर से हवा चलती है। तो अगर खेत के उत्तर–पश्चिम में पेड़ लगाए जाएँ, तो माइक्रो–क्लाइमेट में बहुत फायदा होगा।

चौथी महत्त्वपूर्ण बात है – पशुपालन। हमारे देश में कुछ उत्तर–पूर्वी राज्यों और केरल को छोड़कर सूखा ज्यादा है, वातावरण में नमी कम होती है। इसलिए यहॉ अधिकांशतः चार महिने बारिश के मौसम में ही प्राकृतिक खेती की जा सकती है। ऐसे क्षेत्र में पशुपालन बहुत जरूरी हो जाता है, ताकि गोबर और गोमूत्र का उपयोग किया जा सके।

हमारे देश में यह एक भ्रम पैदा कर दिया है कि हरित क्रान्ति की वजह से देश की कृषि पैदावार में वृद्धि हुई है। यह हम सब जानते हैं कि पैदावार अच्छी मिट्टी, नमी और पानी की वजह से होती है। जमीन में केमिकल डालने से तो मिट्टी और पानी दोनों ही खराब हो रहे हैं, तो इससे पैदावार कैसे बढ़ सकती है! पैदावार बढ़ने के पीछे भी सच्चाई यह है कि ज्यादा फसल लेने के लिए लोगों ने पेड़ काटे, जिससे खेती की जमीन बढ़ गई और सिंचाई के ज्यादा प्रयोग से किसान साल में एक के बजाय दो–दो फसलें लेने लग गए।

खेती के बारे में हमारी समझ बनी है कि हमारी जो जमीन है, वो हम और हमारे आस–पास की जरूरतें पूरी करने के लिए है, ना कि बड़े स्तर पर व्यवसाय करने के लिए। खेती के काम में हम प्रकृति के साथ ज्यादा जिम्मेदारीपूर्ण जीवन जी सकते हैं। प्राकृतिक खेती अगर कोई सीखना चाहते हैं, तो यहॉ बहुत अनुकूलता है। हमारे पास रासायनिक खेती और जैविक या सजीव खेती करने वाले लोगों की तुलना में भी बहुत कम पैसा है, लेकिन हमारे पास प्रकृति की जो पूँजी है, वो पर्याप्त है। प्राकृतिक खेती में रुचि रखने वाले लोग आमन्त्रित हैं।

पता :– ग्राम रवाला, पो. सतनूर, वाया वरूड,
जिला अमरावती, महाराष्ट्र फोन : 07229–238171

सफर : बोरियत से ख़ैरियत का

– शिरीष खेर <shirishkher@yahoo.co.in>

मेरा बचपन लखनऊ में गुजरा। आज का लखनऊ नहीं – सत्तर और अस्सी के दशक का लखनऊ – शान्त, प्रदूषणमुक्त और तनावमुक्त। पढ़ाई भी खूब की और खेलकूद भी खूब किया।

फिर जब 12वीं कक्षा का समय आया, तो सब–कुछ बदल गया। अनगिनत लोगों की तरह मैं भी उच्च शिक्षा, फिर उच्चतर शिक्षा और फिर नौकरी की राह पर निकल गया। यह सफर 10 साल तक चला। जीवन बहुआयामी न होकर सिर्फ आय के लिए जो कुछ करना पड़ता है, उसी में सिमट गया। यह जरूरी था या नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन प्रश्न यह है कि हमने कैसी व्यवस्था बना ली है कि इस रास्ते पर चलने से पहले कोई नहीं बताता कि इसका कोई पर्याय भी है। अगर कोई मुझे बताता, तो मैं थोड़ा सोच–समझकर फैसला करता। शायद मेरे जीवन की दिशा भिन्न होती।

मैं एक निजी कम्पनी में कार्यरत था। मेरा काम सूचना तन्त्र विभाग (I.T.) में एक प्रबन्धक का था। मजे की बात यह थी कि कम्प्यूटरों के विषय में जो काम उस विभाग में लोग करते थे, उसमें मुझे कोई महारथ हासिल नहीं थी। ये बात अचम्भे की नहीं, बल्कि आजकल की संस्थाओं में आम है। विभाग का मुखिया उस विभाग के मूल काम में पारंगत न होकर मात्र 'प्रबन्धक' होता है। मैं पूर्णतया अन्य कर्मियों पर निर्भर था। मेरी शक्ति मेरा ज्ञान नहीं, मेरा 'प्रबन्धक' का ओहदा थी। मुझे महसूस होने लगा कि मुझे किसी भी काम को करने का ज्ञान और प्रबन्धन दोनों का अनुभव होना चाहिए, तभी मेरे द्वारा लिए गए निर्णय ठोस अनुभव पर आधारित होंगे।

इस सफर के अन्त में मुझे लगने लगा कि कुछ गड़बड़ है – पैसा है, लेकिन खुशी कम है, कुछ सृजनात्मक करने की चाह है, लेकिन क्या करूँ यह पता नहीं है, दिनचर्या में विविधता चाहता हूँ, लेकिन सब–कुछ करने का समय नहीं। इन्हीं बातों की वज़ह से मैंने नौकरी छोड़ी। नौकरी छोड़ना इसलिए सम्भव हुआ कि मेरी पत्नी की आय में हम दोनों का गुजारा सम्भव था। पिछले दो वर्षों से मैं जीवन की राह ढूँढ़ रहा हूँ – एक ऐसी राह, जिसमें सन्तोष हो, विविधता का रस हो, स्वाभिमान हो और स्वावलम्बन हो।

कुछ समय पहले, ऐसे कुछ लोगों के सम्पर्क में आया, जो छोटी–बड़ी खेती करते हैं, परन्तु नैसर्गिक या जैविक पद्धति से। उनके विचार जानकर, रहन–सहन देखकर बहुत अच्छा लगा। प्रकृति से स्पर्द्धा न करके, समन्वय बनाकर रहने का विचार मुझे भा गया। इसके अन्तर्गत स्थानीय चीजों से ही घर बनाना (न कि दूर से ढोकर लाई गई वस्तुओं से), प्लास्टिक/केमिकल जैसे अप्राकृतिक पदार्थों का उपयोग टालना, खेती में विष या रासायनिक उर्वरक नहीं डालना – ये सब बातें आती हैं। मोटे तौर पर सादगी का जीवन, इच्छाओं पर थोड़ी लगाम और धरती से प्रेम – ये मूल बातें हैं।

अब मेरा ऐसा विचार है कि अपना वर्तमान शहरी रहन–सहन छोड़कर, शहर के बाहर अपनी जमीन पर रहूँ। इस स्थानान्तरण के साथ क्या–क्या बदलेगा – कौनसी आदतें? कौनसे विचार? कौनसी घर की वस्तुएँ? काम करने के तरीके? लोगों ने आगाह किया है कि रहने का स्थान बदलना आसान है, पर रहन–सहन बदलना कठिन।

शायद पहली बात जो बदलेगी, वह होगी समय का बोध। शहर में अनेक बातें दिन में हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। फोन, अखबार, टीवी, घर से ऑफिस तक का सफर, मन बहलाव के लिए सिनेमाघर या बाजार जाना। अगर मैं दूर अकेले रहूँ, तो दिनचर्या क्या होगी? समय बहुत धीमे बीतेगा, ऐसा लगता है। अपने दिमाग को नए तरीके से ढालना होगा, रफ़्तार कम करनी होगी।

दूसरी बात है शारीरिक काम की। शहर में मेरा काम कॉलेज में पढ़ाने का रहा है। कम्प्यूटर के सामने भी काफी समय निकलता है। जबकि भविष्य में थोड़ी–बहुत तरकारी–फल खुद उगाने की इच्छा है – तो शारीरिक मेहनत बढ़ेगी और सेहत सुधरेगी। यह भी सोचता हूँ कि मौसम और सूर्य के उदय–अस्त होने के अनुसार जीवन ज्यादा जुड़ा रहेगा। यह सफर शायद मुश्किल होगा, लेकिन बहुत दिलचस्प भी।

अपनी इस खोज यात्रा में मैं कुछ परिवारों से मिला, जिनसे मुझे बहुत प्रेरणा मिली और मेरे खेती करने के विचार को मजबूती मिली। सोलापुर में रेनके परिवार एक चौथाई एकड़ जमीन से पूरे परिवार की सभी खाद्य जरूरतों को पूरा करने के प्रयोग कर रहा है। ओरोविल में कई ऐसे लोग मिले, जो अपनी नौकरी या अन्य व्यवसाय छोड़कर खेती की आकर्षित हुए हैं। पिछले दिनों रवाळा (अमरावती) में 'प्राकृतिक खेती उत्सव' में शामिल हुआ, जहाँ श्री बसन्त फुटाणे के खेती के प्रयोग देखे और अनुभव किए। अधिक जानकारी के लिए इनसे निम्न पते पर सम्पर्क कर सकते हैं :–

1. सुश्री पल्लवी रेनके, एफ–1/ए–5, अवन्ती नगर, जूना पुणे नाका, सोलापुर – 413002 (महाराष्ट्र)
2. ओरोविल टाउनशिप, टाउन हॉल, एडमिनिस्ट्रेटिव एरिया, ओरोविल – 605101 (तमिलनाडु)

सम्पर्क :– शिरीष खेर, 5 मंजूषा – अ, गुलमोहर पथ, लॉ कॉलेज रोड़, पुणे फोन : 020–25456184/9890397016

खेती स्वराज का प्रतीक है।

– सन्दीप चव्हाण <mindblowingsandip@yahoo.co.in>

हाथों से किए जाने वाले हर काम में मेरी रुचि और उत्साह होता है। उसे मैं अपने मन से सफल बनाने की कोशिश करता हूँ। मुझे किसी के साथ स्पर्द्धा में, खुद को सिद्ध करने का प्रयत्न भी अच्छा नहीं लगता। नए रास्ते ढूँढ़ना, उन पर चलना, अपने जीवन की डोर अपने हाथ में रखता पसन्द करता हूँ। किसी व्यवस्था के नियन्त्रण में रहना पसन्द नहीं आता। इस स्वभाव के कारण स्कूल की पढ़ाई छोड़ दी।

कुछ साल पहले मैं 'अभिव्यक्ति' और शिक्षान्तर परिवार के विचारों के साथ जुड़ गया। मेरा विश्वास दृढ़ हो गया कि सीखने के लिए सारी दुनिया है। कोई चारदीवारों की चौकड़ी किसी को सर्वगुण सम्पन्न बनाने में सक्षम नहीं हो सकती। अपने हृदय, हाथ और बुद्धि के समन्वय से किया गया काम ही महत्वपूर्ण है। स्कूली पढ़ाई के परिणाम, व्यक्ति के आचरण और विचारों में होने वाले बदलाव की प्रक्रिया को समझने लगा। धीरे–धीरे मेरी रुचि निसर्ग, पर्यावरण में बढ़ने लगी। खेती करने एवं खेत में अलग–अलग प्रयोगों की इच्छा होने लगी। अपने खुद के जीवन को बाजार, मीडिया, स्कूल जैसी नियन्त्रणकारी व्यवस्थाओं से मुक्त करने की सोच बढ़ने लगी।

इन सबको देखते हुए 'खेती ही करनी है' यह तय हो गया। तो घर पर ही खेती के कुछ प्रयोग करने शुरू किए। रसोईघर और पेड़–पौधों के कचरे का खाद बनाना शुरू किया। इसके बाद ध्यान में आया कि पेड़ या धरती पर उपजी कोई भी चीज बेकार, फैंकने लायक या जलाने के लिए नहीं है। तो इसका प्रयोग मैंने बादाम के पेड़ के साथ शुरू किया। पेड़ की जड़ों के पास कचरा डालने लगा। 6 महिने बाद इसके अच्छे परिणाम दिखने लगे। पेड़ बढ़ने लगा। इससे निसर्ग की कुछ चीजें ध्यान में आईं। जैसे – कचरा पेड़ की जड़ों के पास डालने से वहाँ नमी रहने लगी। नमी से वहाँ छोटे जीव–जन्तु आने लगे या पैदा होने लगे। इनमें केंचुए भी थे। कचरा डालने से उसका खाद तो बनता ही है, साथ ही सूरज की प्रखर किरणों से पेड़ और जीव–जन्तु बच जाते हैं। ऐसी कुछ–कुछ बातें अनुभव एवं निरीक्षण से सीखने लगा।

अभी इसी तरह से खेती करने की इच्छा सिटी फार्मिंग (शहरी खेती) का आकार ले रही है। इस काम को एक साल पूरा हो रहा है। इसकी शुरूआत 'अभिव्यक्ति' परिसर में सीमेंट के फर्श पर खेती से हुई। यह काम दो हिस्सों में देख सकते हैं – एक जमीन पर और दूसरा टेरेस, बालकनी या फर्श पर। फर्श पर लगाए जाने वाले पौधों के लिए शुरूआत में 2 X 3 फुट की ईंटों की चौरस जाली बनाते हैं, जिसकी ऊँचाई कम से कम 9 इंच हो। इस चौरस में सबसे नीचे के स्तर में नारियल एवं गन्ने के छिलके डालते हैं। उसके ऊपर सूखा प्राकृतिक कचरा डाल दें। लगभग 10 दिन तक उसमें रसोई का कचरा या फल–सब्जियों के छिलके आदि छोटे–छोटे टुकड़े करके डालते रहें। उसके बाद उसमें कोई मनपसन्द पेड़ लगाएँ या seed balls (बीज के ऊपर मिट्टी लगाकर बनाई गोलियाँ) डाल दें। उसके बाद प्रकृति अपना काम शुरू कर देती है। ऐसे प्रयोग करके मैंने डम्प–यार्ड (कचरे का ढेर) में जाने वाले या जलाए जाने वाले कचरे का व्यवस्थापन अपने ऑफिस की जगह पर किया है। मैंने औसतन 10 किलो गीला कचरा प्रतिदिन के हिसाब से एक साल में 3650 किलो कचरा डम्प–यार्ड तक पहुँचने से बचाया होगा।

इस तरह से फर्श पर हम फल, फूल, सब्जी, कैक्टस, औषधीय वनस्पतियों के पाँच प्रकार के गार्डन तैयार कर सकते हैं। अब तक हमने यहाँ नारियल, अंजीर, चीकू, अमरूद, केला, गन्ना, सहजना (drum-stick), चेरी, बादाम, नींबू, बॉस आदि पेड़ लगाए हैं। कुछ पेड़ों को फल आ रहे हैं।

सिटी फार्मिंग से तीन प्रकार के फायदे हैं :– 1. आज की उपभोगवादी जीवनशैली से बहुत कचरा पैदा हो रहा है। अतः इससे कचरे को डम्पयार्ड में जाने से रोका जा सकता है और उसका घर में ही व्यवस्थापन किया जा सकता है। 2. फल और सब्जियों के परिवहन में बहुत सारा प्रदूषण होता है। छत, बालकनी या टेरेस में सब्जियाँ आदि उगाने से इस प्रदूषण को कम किया जा सकता है। 3. इस तरह की खेती से घर की दीवारों और छत पर तेज धूप से होने वाली दरारों से बचाया जा सकता है।

प्रकृति से हम जितना हम लेते हैं, उतना ही हमें उसे वापस देना चाहिए। प्रकृति हमें दुगुनी क्षमता से वापस देगी। यह अनुभव मैंने सिटी फार्मिंग के इस प्रयोग में किया है। मेरे विचार से आज बढ़ते शहरों और बढ़ती आबादी को देखते हुए सिटी फार्मिंग बहुत जरूरी है। इससे हम पर्यावरण को सन्तुलित रख पाएँगे।

खेती मानवीय जीवन की स्वतन्त्रता और स्वराज का प्रतीक है। यह हमें आत्मसंवाद के मौके देती है। जहाँ प्रयोग करने की स्वतन्त्रता है, वहीं सृजनशीलता विकसित होती है, ऐसा मेरा विश्वास है। ऐसे कामों से मेरे खुद के जीवन में काफी बदलाव आ रहे हैं। जैसे मैं अब प्लास्टिक बैग एवं अन्य रासायनिक चीजों का उपयोग नहीं करता हूँ। आने वाले समय में कम जगह में खेती करते हुए अपना जीवन शोषणकारी बाजारी व्यवस्था से दूर रखकर स्वयंपूर्ण बनाना चाहता हूँ। कम पानी में खेती के प्रयोग, स्थानीय जड़ी–बूटियों के गार्डन, कबाड़ से जुगाड़ आदि कई छोटे–छोटे प्रयोग मैं करना चाहता हूँ। अपने प्रयोगों को देखने के लिए मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ।

सम्पर्क करें :– अभिव्यक्ति, 31–ए, कल्याणीनगर, आनन्दवली शिवार, गंगापूर रोड़, नाशिक फोन : 0253–2346128

मुक्ति में शक्ति की तलाश

– अपूर्वा संचेती <asancheti_in@yahoo.com>

दसवीं कक्षा के बाद मैंने एक साल के लिए स्कूल छोड़ने का निर्णय लिया। कई बार सोचने और परिवार के लोगों के साथ चर्चा करने के बाद। वैसे यह निर्णय लेना बहुत मुश्किल नहीं था, क्योंकि परिवार का आधार था। मित्र परिवारों में जब यह बात फैली, तो उन्हें अचम्भा हुआ। कहीं कुछ गड़बड़ भी लगी। इस साल में अलग–अलग वैकल्पिक स्कूलों में जाकर रहने की इच्छा थी। इससे मैं समाज का ताना–बाना समझ पाऊँगी, यह आशा भी थी।

पहली जगह थी केरल के वायनाड़ जिले में 'कणवू' नामक संस्था। खैर, मैं इसे संस्था या स्कूल तो नहीं कह सकती। क्योंकि वहाँ जाने से पता चला कि यह एक समुदाय ही है। वहाँ उसी इलाके के आदिवासी बच्चे रहते हैं और एक–दूसरे से सीखते हैं।

घर से पहली बार मैं अकेली इतनी दूर लम्बा समय बिताने के लिए जा रही थी। मन में भावनाओं की उथल–पुथल हो रही थी। कणवू – कुछ मिट्टी की झोंपड़ियाँ, कुछ बड़े हॉल और आजू–बाजू में बहुत सारे पेड़–पौधे। हॉल के सामने चावल के हरे–भरे खेत। पास ही एक छोटा नाला और फिर जंगल।

कणवू में वैसे कहा जाए, तो कोई टाइम टेबल नहीं है। वह बस एक जगह है, जहाँ हम अपने अनुभव सबके साथ बाँट सकते हैं और दूसरों के अनुभव जान सकते हैं। इसलिए सच्चे अर्थ में वह ज्ञान का आदान–प्रदान है। यहाँ मुझे एक बड़ा झटका लगा। अब तक मैं एक बनी–बनाई, पूर्व–नियोजित (planned) एवं सुरक्षित जगह में रही थी। कणवू में पता चला कि अगर मुझे कुछ करना है, तो खुद ही पहल करनी पड़ेगी। पहले चार दिन में ही मुझे समझ आया कि जितना आसान मैं उसे समझ रही थी, उतना तो वह नहीं है।

फिर खुद ही जाकर मैं के. जे. बेबी (जिन्होंने कणवू की शुरूआत की) के साथ बातचीत करने लगी। बच्चों के साथ घूमने जंगल जाने लगी। इसी काल में बहुत वाचन, चिन्तन, मनन भी हुआ। बेबी और शर्ली मदद करने के लिए थे ही। धीरे–धीरे मुझे कणवू का व्यापक स्वरूप समझ में आता गया। वहाँ बच्चे जब चाहे, तब आकर अपनी रुचि की चीजें सीख सकते थे, खेल सकते थे। छुटपन से ही वे अपनी रुचि के अनुसार समय बिताने का कौशल्य खुद सीख रहे थे। वहाँ कोई शिक्षक, पाठ्यपुस्तकें, परीक्षाएँ, कक्षाएँ तो नहीं थीं। कहीं भी प्रतिस्पर्द्धा या किसी से अच्छे होने की भावना भी नहीं थी। जो चीजें मुझे शहर में रहकर सहज या स्वाभाविक लगती थी, वे वहाँ थी ही नहीं। पर ज्ञान व स्वयं–प्रेरणा तो किसी भी स्कूल या संस्था से ज्यादा थी।

कुछ ही दिनों में छोटे बच्चों ने मुझसे बहुत बातें करने की शुरूआत की। उन्होंने मुझे पूरी तरह स्वीकार लिया था। अब मेरी भाषा उनसे बातचीत या मित्रता करने में रुकावट नहीं थी। सुबह हम साथ मिलकर कलरीपयट्टुम करते थे। कलरीपयट्टुम केरल की पारम्परिक मार्शल आर्ट है, जिस तरह जापान की जूडो–कराटे। बारिश का मौसम होने के कारण खेती भी की। कभी सॉप पकड़े, तो कभी बॉस के पेड़ों पर मिलने वाला मध (शहद) खाया। बहुत नाचे और गाए भी। दरअसल पहली बार मैंने अपने आपको पूरी ऊर्जा के साथ नाचते देखा। कुछ क्षणों के लिए तो कम्यूनिटी–एनर्जी का अनुभव हुआ। ये मेरे लिए बहुत विलक्षण अनुभव था।

शुरूआत के कुछ दिनों तक मानसिक तौर पर पूना से कणवू की तुलना होती रही। मैं उस जगह को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पा रही थी। पर बेबी से काफी संवाद हुआ और मैं खुद कुछ प्रयोग अपने आप करने लगी। अनेक बार पढ़ा हुआ तत्व–ज्ञान सामान्य तौर पर जीवन में लाने का कठिन काम करने का प्रयास भी किया और अभी भी करती हूँ। 'Be in the present' (वर्तमान में जीओ) इन सीधे–सादे शब्दों की साधना में अढ़ाई महिने कब बीत गए, पता ही नहीं चला।

कणवू से मिली हुई प्रेरणा, आत्मविश्वास तो मुझे हमेशा काम आया। पूना से जब निकली, तब दिमाग में यही था कि कुछ समाज से जुड़कर करना है। क्या, कैसे, इन सवालों के जवाब तो मेरे पास अभी भी नहीं है, पर उसे एक बड़ा महत्व का मोड़ कणवू में मिला, वह था – आत्मशोध से समाज शोध। खुद को ढूँढ़ना और पहचानना।

कणवू के बाद कुछ और वैकल्पिक शालाओं में गई। वहाँ भी कई चुनौतियों और प्रश्नों का सामना करना पड़ा। एक साल बाद कॉलेज न जाने की इच्छा थी। पर सोचा दो साल कॉलेज भी जाकर देख लूँ। कॉलेज गई, तो बहुत तकलीफ हुई। कुछ विषयों को अलग–अलग दृष्टि से समझने की कोशिश कर रही हूँ। उसी के साथ आन्तरिक यात्रा भी चल रही है। खुद का स्वातन्त्र्य लेने का प्रयास करती हूँ। बहुत बार असफल भी हो चुकी हूँ। मन में कई सवाल हैं भविष्य के बारे में। क्या स्वावलम्बी होने का सपना पूरा होगा? मैं जो कर रही हूँ, वो क्यों कर रही हूँ?

अभी मेरा सबसे बड़ा मकसद तो मुक्ति पाने का है। वह मिले ना मिले, पर उसी दिशा में प्रयत्न करते रहना चाहती हूँ। एक साल के स्वतन्त्र अनुभव के बाद मैं यह बदलाव तो महसूस करती हूँ कि मेरी खुद सोचने की प्रक्रिया शुरू हुई है। मैं देखती हूँ कि मेरे बाकी दोस्त जो पढ़ाया जाता है, उसे बिना सोचे–समझे स्वीकार कर लेते हैं और उस पर कोई प्रश्न नहीं उठाते हैं।

फिलहाल मेरा निर्णय है कि मैं 12वीं कक्षा के बाद कॉलेज नहीं जाऊँगी और इसके बजाय अलग–अलग चीजें सीखने के अनुभव लूँगी। मुझे नाच और संगीत में बेहद रुचि है। अगर किसी के पास कोई सुझाव हैं, तो जरूर लिखें।

सम्पर्क पता :– 6, शिवनाथ अपार्टमेंट, 1304/10 शुक्रवार पेठ, पुणे फोन : 020–24478283

निराशा से मुस्कराहट तक

बचपन से ही स्कूली दिनचर्या एक संस्कार की तरह जिन्दगी से चिपक जाती है। पढ़ाई पूरी होने पर जब इससे उखड़ने का वक्त आता है, तब या तो हमारा मनचाही जगह (मेडिकल, इंजिनियरिंग) दाखिला हो जाता है, तो गाड़ी चलती रहती है। वरना हम ऐसी जगह किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़े हो जाते हैं, जहॉ कई राहें दिखाई देती हैं और हम कहीं नहीं जा पाते हैं।

मैं भी इन अन्धी गलियों से गुजरता आया। इंजिनियरिंग के सपने छोड़ मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव बनने के लिए हजार रुपये जमा करवाए। ट्रेनिंग के नाम पर कुछ शहरों में अपने पैसे फूॅके। फिर जब देखा, अपना अहं बढ़ाने के लिए वे लोग मेरा ही स्वाभिमान चूर–चूर कर रहे हैं, तो वह राह छोड़नी ही पड़ी। एक रिश्तेदार के यहॉ सुनारी का काम सीखने भी गया, पर एक महीने बाद जब यह अहसास हुआ कि कुछ हासिल नहीं होगा, तो लौट आया। माता–पिता ने कहा कि इतना टूटने की जरूरत कहॉ है? पापा के साथ खुद की दुकान पर बैठ सकता हूॅ। दुकानदार बनने की तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। पर आज वही दुकान डूबते को तिनके का सहारा लग रही थी। कई–कई दिनों तक ग्राहक नहीं आते। मैं यों ही बैठा रहता। इक्के–दुक्के जब आते, तो मैं उनका व्यवहार भॉपने लगता। उनके व्यवहार को समझता और अपनी बेचने की कला को निखारने की कोशिश करता।

दुकान में एक अलमारी में 9–10 डिब्बियॉ थीं। हरेक में एक–एक ईयर–रिंग टॅगी थी। एक डिब्बी खाली हुई, तो मैंने सोचा – क्यों ना खुद ही बनाकर टॉग दूॅ। मुझे धातु को टॉका लगाकर जोड़ना नहीं आता था। मुझे पिताजी ने कहा – छोटी सी ईयर–रिंग में तार को यों ही मोड़कर लगा दें, तो भी ईयर–रिंग नहीं गिरेगी। मैंने चॉदी के पुराने पाजेब के टुकड़े से अपनी कल्पना से एक जोड़ी ईयर–रिंग बनाई। ऊपरी भाग में पेच या धातु के दो टुकड़ों को टॉके से जोड़कर बनाए परम्परागत तरीकों को तिलांजलि देते हुए सादे तार से सिर्फ मोड़कर वह हिस्सा बना दिया। उस समय चॉदी को तौलकर कीमत ऑकी जाती थी। पर मैंने स्वयं उसकी कीमत 35 रुपये तय कर दी। दो–तीन दिन में ही वह बिक गई। यह मेरी पहली सफलता थी। ऐसी मैंने कई ईयर–रिंग बनाई, सब बिकी। क्योंकि पर्यटकों को वह सिर्फ मेरी ही दुकान पर मिलती थी। मेरी कल्पना को मानो पंख लग गए! उपलब्ध सामग्री से नई–नई डिजाइन की कल्पना करता और उन्हें साकार करने की कोशिश में जुट जाता। मेरी बनाई ज्वैलरी को पर्यटक पैक करने के बजाय झट से पहन लेते और बाजार में घूमते। इस तरह मेरी स्व–रचित कला का प्रसार हुआ। कुछ साल बाद जब कला की यह लहर लौटकर मेरी दुकान पर फिर से आती, विदेशियों द्वारा पहनी ज्वैलरी मेरी ही स्टाइल में बनी होती, पर मैं पहचान जाता कि मेरी बनाई हुई नहीं है। इसका मुझे अफसोस नहीं होता, बल्कि खुशी होती कि कला और सृजन के क्षेत्र में मैंने भी अपना योगदान दिया। कई बार मैं स्वयं भी उनकी पहनी ज्वैलरी से आइडिया ले लेता कि किस तरह अपने सीमित हुनर व संसाधनों से वह जेवर अपनी दुकान पर बना सकता हूॅ।

मेरी बनाई ज्वैलरी जल्द ही प्रचलन में भी आ जाती। क्योंकि उन मशीनी सामग्री को मैं सरल, सहज रूप में प्रस्तुत कर देता और उन्हें बनाना आसान हो जाता। पाजेब के टुकड़ों से होते हुए माला के मोती, पत्थर, बीज, ट्यूब के टुकड़े, स्केच पेन के टुकड़े, बिजली के तार के रंग–बिरंगे कॅवर को भी अपनी ईयर–रिंग्स में काम में लेने लगा। दुकान में पड़ी डिब्बियों को भी पर्यटक पसन्द कर ले गए। मुझे भी उनसे छुटकारा मिला, क्योंकि वे जगह बहुत घेरती थी और दुकान पर स्थान सीमित था। मैंने गत्ते पर मखमल चिपकाकर उन पर कई ईयर–रिंग्स एक साथ टॉग दी। तो उस तरीके को भी दुकानदारों ने अपनाया। मेरी जरूरतों ने मेरी डिस्प्ले की स्टाइल बनाई, जो सुविधाजनक होने से सबको स्वीकार्य थी।

बाकी कमी को मेरे मित्रतापूर्ण व्यवहार ने पूरा कर दिया। पर्यटक खरीददारी करे या नहीं, मैं अपनी मुस्कराहट फीकी नहीं पड़ने देता। ना ही अपने व्यवहार में ठण्डापन लाता। बनावटी मुस्कराहट भी कभी–कभी असली सी बनकर चेहरे पर चिपकी ही रह जाती।

सम्पर्क पता :– विनोद सोनी, 11 अहिंसापुरी, उदयपुर, राज.
फोन : 0294–2450784

सॉपों का संसार

एक दिन मैं 'एनिमल एड' नामक संस्था में गया। मैंने देखा कि यहॉ पर कई प्रकार के जानवरों की देखभाल की जाती है। यहॉ पर स्नेक केचिंग भी करते हैं। पूरे राजस्थान में केवल तीन प्रकार के सॉप – कोबरा, करैत और वाइपर ही जहरीले होते हैं, लेकिन जानकारी के अभाव में लोग किसी भी प्रकार के सॉप को देखते ही मार डालते हैं। तो मैंने सोचा कि क्यों नहीं इन सॉपों को बचाया जाए और इनके बारे में सीखा जाए। मैं यहॉ के स्नेक केचर चिमन सिंह जी से मिला व उनसे स्नेक केचिंग सीखने की रुचि जताई।

मुझे स्नेक केचिंग सीखने के लिए बड़ौदा जाने का मौका मिला। बड़ौदा के पास अलकापुरी गॉव में एक संस्था है, जहॉ सॉप पकड़ना सिखाया जाता है। यहॉ पर मैंने स्नेहल भट्ट से सॉप पकड़ना सीखा। जब में वहॉ गया, तो वे मुझे एक कमरे में लेकर गईं, जहॉ बहुत सारी प्रजातियों के सॉप थे। उन्होंने पहले मुझे बिना जहर वाले सॉप (रेड स्नेक) से कटवाया, जिससे मुझे यह विश्वास हुआ कि उस सॉप में वाकई जहर नहीं था। मेरा डर थोड़ा कम हुआ। फिर मैंने उसे जमीन पर छोड़कर वापस पकड़ने की कला सीखी। उसके बाद पानी वाला सॉप पकड़ा। इसके बाद मुझसे वाइपर सॉप पकड़वाया, जो बहुत जहरीला होता है। फिर मुझे कोबरा पकड़ने के

मन के रंग

मैं पिछले तीन सालों से खादी से जुडी हूँ। खादी के बैग, बैल्ट, कूशन आदि बनाती हूँ और चरखा चलाती हूँ। पर सब बैग सफेद होने के कारण मुझे खास मजा नहीं आता है, क्योंकि वह जल्दी खराब हो जाते हैं। इसलिए मै इनकी नेचुरल कलर से रंगाई करना चाहती थी। क्योंकि केमिकल कलर शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। इस समय मुझे इन प्राकृतिक रगों की जरूरत क्यों महसूस हुई? क्योंकि मैं अपने आस–पास देख रही हूँ कि मेरे बहुत से दोस्त रासायनिक रंगों से रँगे कपड़े ही पहनना पसन्द करते हैं, जिससे हमारे पेड़–पौधे, जमीन लगातार बंजर हो रहे हैं। इस कारण मैंने उन रंगों को ढूँढ़ना शुरू किया, ताकि प्रकृति के साथ जो मेरा रिश्ता है, उसे बढ़ा सकूँ और उसे बचा सकूँ।

उदयपुर में मैंने अनार के छिलकों से कुछ कपडों पर रंगाई की और काफी अच्छे नतीजे मिले। इसके बाद मेरी रुचि और बढ़ गई। जब मैंने वेड़छी में सम्पूर्ण क्रान्ति विद्यालय में नेचुरल कलर से रंगाई करने की कार्यशाला के बारे में सुना, तो मैने वहाँ जाने का निणर्य लिया।

वेड़छी में जाने के बाद मैंने नेचुरल कलर से रंगाई करने का हुनर सीखा। वहाँ मैने देखा कि रंगाई से पहले कपड़े को अच्छी तरह से धोना, फिर वापस अरीठे से धोना पड़ता है। इसके बाद रंगाई की प्रक्रिया शुरू होती है। मेने वहाँ नीलगिरि की छाल से कलर बनाने कि प्रक्रिया समझी। पहले नीलगिरि की सूखी छाल को कूटकर पीसना व पूरी रात भिगोकर रखना। अगले दिन उस छाल को उबालकर उसमें गीला कपड़ा डालकर कपड़े को हिलाते रहना लगभग तीस मिनट तक। फिर उसे धोकर छाया में सुखा दो। यह पूरी प्रक्रिया चूल्हे पर की गई। इन सारी प्रक्रियाओं में बहुत पानी इस्तेमाल होता है और वो सारा पानी पेड़–पौधों में डाला जाता हैं ,लेकिन मेरे इलाके में कम पानी होते हुए भी रंगाई के काम को कैसे आगे बढ़ा सकूँ, यह मेरे लिए एक प्रश्न है?

सम्पूर्ण क्रान्ति विद्यालय सूरत से लगभग पन्द्रह किमी दूर वेड़छी गांव में है। यह स्थान शान्ति एवं हरियाली से परिपूर्ण है। मैंने वहाँ पर देखा कि हर व्यक्ति चरखा कातता है और खेती भी करता है। वस्त्र स्वावलम्बन की सोच को और गहराई से मैंने वहाँ जाकर समझा। रंगाई कार्यशाला में आए कुछ नए लोगों के द्वारा मुझे वहाँ पर बहुत सी नई चीजें सीखने को मिली, जैसे–बुक बाइंडिंग, बांस के फर्नीचर, जूट के बेल्ट आदि।

प्राकृतिक रंगों कि एक खास बात यह है कि वे खादी व सूती कपड़े के अलावा किसी और पर नहीं चढ़ते हैं। खादी भी पूरी तरह प्राकृतिक होनी जरूरी है। क्योंकि वह रंग प्राकृतिक है और प्रकृति .से बनी चीजों से ही रिश्ता रख सकते हैं। अगर हम इसे रेशमी कपड़े पर करना चाहेंगे, तो वह नहीं चढ़ेगा। प्राकृतिक रंगों से रंगे कपड़ों का रंग, अगर हल्का भी हो जाए तो हम उन्हें पुनः रंग सकते हैं। वास्तव में कपड़ा खराब नहीं होता है। हर बार एक नया रंग देखने को मिलता है। यह प्रक्रिया रासायनिक रंगों के साथ करेंगे, तो हमें एक ही तरह का रंग देखने को मिलेगा और उस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकेगा।

खादी पर काम शुरू करने से पहले मैंने एक निश्चय किया था कि मैं जहाँ तक हो सके खरीद कर कपड़े नहीं पहनूँगी। मेरे अपने परिवार से जो आता है, वो ही पहनती हूँ। खादी को लेकर अभी मेरे दिमाग में बहुत बड़ा द्वन्द्व चल रहा है। वेड़छी से वापस आने के बाद यह कदम उठा पाई हूँ कि कम से कम अपने तौलिए, चद्दर, पर्दे खुद ही रंगना शुरू किया है।

सम्पर्क :–गुड्डी प्रजापत, शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर

लिए दिया गया। मेरे आसपास चार–पॉच लोग खड़े हो गए और उन्होंने कोबरे को छेड़ा। क्योंकि कोबरा को जब छेड़ते हैं, तो वह बहुत गुस्से में हो जाता है और ऐसी हालत में उसे पकड़ना बहुत कठिन होता है। पहले तो मुझे डर लगा, लेकिन बाद में मैंने उसे भी पकड़ा। उसके बाद से मैंने अब तक करीब 150 सॉप पकड़े होंगे।

स्नेक केंचिंग करते हुए मैंने सॉपों के बारे में बहुत सीखा। आजकल जिस तरह से टीवी चैनलों पर दिखाया जाता है, उससे लगता है कि सॉप और अन्य जंगली जानवर बहुत खतरनाक और हिंसक होते हैं। टीवी चैनलों पर जंगली जीवों के बारे में अपनी 'जानकारी' बढ़ाने के बजाय हम थोड़ा समय भी जंगल में बिताएँ ,तो बहुत कुछ सीख सकते हैं।

सॉप पकड़ना मेरे लिए केवल शौक ही नहीं है। इससे मैं अपने आस–पड़ौस में लोगों की मदद भी कर देता हूँ और सॉपों को सुरक्षित पकड़कर जंगल में छोड़ देता हूँ। मुझे लगता है कि प्रकृति में सब जानवर स्वतन्त्रता से जीने का हक है। जो लोग स्नेक केचिंग सीखना चाहते हैं, सम्पर्क कर सकते हैं।

सम्पर्क :– दिलीप सिंह राठौड़, 49 सी, नीमचमाता स्कीम, देवाली, उदयपुर, राज. फोन : 9928357274

सवालों की खोज

– विशाल सिंह
<aachi8@gmail.com>

यह मेरे साथ पहली बार हुआ कि मैं घर से इतना दूर गया और पहली बार किसी दूसरी दुनिया में रहा था। पहली बार अकेले यात्रा व नए देश (साउथ अफ्रीका) मे जाने का कारण था उनके साथ सीखना उनका काम को जो की कबाड से जूगाड व कबाड मुक्ती। वहा पर केसे केसे प्रयोग चल रहै जीनको मे सीख व अपने लोगो को भी बता सकता हूँ।

जो.बर्ग में बड़ी–बड़ी बिल्डिगों, लम्बी सड़कों और एक बड़े से पार्क के कोने में स्थित **ग्रीन हाउस प्रोजेक्ट** मानो उस पार्क में चार चॉद लगा रहा हो तथा उन बिल्डिंगों (जो की नातो भारत मे है ना ही मे चाहता हूँ। इतनी सारी गाडीया व धुआ व मल्टी नेश्नल व्यापार ये तो यहा पर हो जाएगी अगर ऐसा ही चलता रहा वेश्वीकरण के चलते) के बीच अपने ग्रीन होने के कारण शान से खड़ा है।

ग्रीन हाउस प्रोजेक्ट वैसा नहीं है, जिसमें केवल पेड़–पौधे रखे जाते हों। यहॉ पर ऑर्गेनिक गार्डनिंग भी होती है। छोटे व और बडे प्राकृतीक तरीको को खोज भी रहे है जेसे के वहा पर वे बेरल गार्डनींग करते हैं मतलब के वो तारो की जाली व प्लास्टीक की चदरो को ढोल की तरह बनाते हैं व उसमे सब्जीया व जडी बुटीयो को लगाते हैं जीसकी दीवरो व उपर ये सभी चजे उगती हैं। जीससे वे गारडनींग को और भी आसान कर सकते हैं पानी को भी बचा लेते हैं। वही पर खाद को भी बनाते है वही पर हो रहे कचरे से। व उसको उगाकर के वही दफतर मे खाते है घर ले जाते हैं।

ये प्रकृति को ध्यान में रखकर बिल्डिंग भी बनाते हैं। पूरी बिल्डिंग में लकड़ी और कॉच का काम बहुत हुआ है रोशनी के लिए। लकड़ी तो प्राकृतिक है ही और यहॉ का फर्श भी वहीं की खोदी हुई मिट्टी, पुरानी बील्डींगो की ईंटों व टाइलों से बनी है। बिल्डिंगों में ड्राई टॉयलेट या इको फ्रेंडली टॉयलेट हैं। जीनका उपयोग वे खाद के रूप मे ले लेते है। कबाड मूक्ती के लीए इससे अच्छी चीज क्या होगी के वही पर हो रहे कबाड का उपयोग हो और मकान बने प्राकृतीक को बीना नुकसान पहुचाय। जोकी मे यही उदयपुर मे करता हूँ के स्थानीय चीजो से ही काम बन जाए और खेती हो जाए जो की मे मेरे छत पर करने की कोशीश करता हूँ। कीतनी अचछी बात है के कइ लोग अग इस प थ्वी को बचाने के अलग अलग प्रयास कर रहे हैं।

मे वहा पर एक प्रकार के लोगो से मीला जीसको के वो रास्टाफारीयन कहते हैं ये लोग बालो को नही कटते हैं व काला पीला हरा, सफेद लाल रंग को ही पहना पसंद करते है। उनके गूरू का कहना है के जीतना हो सके प्रकृती मे ही रहा जाए व ये रंग उनको प्रकृती ने दीये हैं। व जैसा हमे प्रकृती ने भेजा है वेसे ही रहना चाहीये व जो प्रकृती मे हे वेसे ही उसे बचाते हुए व अपनी प्रकृती को बचाते हुए करना चाहीए। यही ग्रीन हाउस प्रोजेक्ट मे ही मुलाकात हूइ और मेरा उसे बता ने पर के मे कबाड मुक्ती पर काम करता हुँ व कचरे को खत्म करने व उससे चीजे बनाता हूँ व प्राकृतीक चीजो को बडावा देता हूँ व चाहता हूँ के जीताना हो सके प्रकृती को ध्यान मे रखते हूँए ही काम हो। तो वो बालता है के वो भी वेसे ही रहते है,तब मेरे मन मे प्रश्न आया के वो क्यो मोबाइल फौन, कोका कोला, मेकडोनल्ड व एसे ही बडी कंपनायो का सामान क्यो उपयोग मे लेते है ? तो एक का उस पर जवाब था के हमे इस बारे मे तो कूछ भी नही पता है! के इन चीजो से भी नुकसान भी होता है! मे भी यही सोच मे पड गया के हम लो गो को कीस–कीस चीज के बारे मे पता होता है के ये भी या कोइ भी चीजै कीतनी भयानक हो सकती है? कौन है जो की सच और जुठ के बारे मे बताता है हम कीसका विश्वास करते है?

मेरे सामने एक दो चीजे हो तो बताउ भी मगर मेरे एक तो ये आलम है के मेरे पसंद की चीज जो की मे कोशीश भी नही कर पा रहा हूँ उससे वो है। टी. वी. वो ही तो है जो की आज कल के इस समय पर सबको नीयंत्रीत करता है। व सभी पर हावी हूआ है। मे भी आज कल मेरे इसी चहीते राक्शस से लडने की कोशीस में हूँ पर कैसे? ये ऐसे मेरे साथ जोडा है के मे मेरे को भी भुल जाता हूँ। पता भी है के ये मेरे काम को रोकने का सबसे बडा कारण हैं।

वहा पर मे जब ग्रीन हाउस प्रोजेक्ट मे था तब मे चाहता था

निवेदन

लेखक के आग्रह के अनुसार उनके लेख को ज्यों का त्यों प्रकाशित किया गया है। आशा है, आप व्याकरण को नजरअन्दाज करते हुए लेखक की मूल भावनाओं का आदर करेंगे। व्याकरण की वजह से किसी की अभिव्यक्ति में रुकावट नहीं होनी चाहिए। – सम्पादक

के कैसे वही पर मे और भी लोगो से मीलु व वहा पर कौन कौन सी संसथा हैं जो की मेरे टाइप का काम करता हैं व वहा पर कबाड से जुगाड करता है। तो कइ लोगो से मीला जोकी अलग अलग मेरे ठाइप काम करते हैं। भले वो कबाड से जूगाड हो या फीर कबाड मुक्ती हो।

वहा से आने के बाद मेने कबाड मूक्त करने के लीए कुछ काम कीया जैसे लोगो के साथ प्लास्टीक को रोकने के उपाय सुजा रहा हूँ जैसे के वे कपउे की थेलीयो को रखे व अतीरीक्त पेकींग मे सामान को ना लेकर के आए। कैसे वे अपने कार्यालय को शादी, दावतो को घरो को, जींदगी को कबाड मूक्त कर सकते हैं। व कोन कोन उदयपूर मे है जो उदयपुर मे रहकर के एसे ही काम को करते है। व उदयपुर को एक नया व साफ करने मे लगे है अपने अपने तरीको सै।

एक बात जो के मेरे दीमाग मे बेठी जो की डरबन मे रहने वाले मुना लखानी जो की कबाड मूक्त पर व ऐसे ही लोकल इशू पर काम करते है प्रकृती को बचाने वाले काम करते है और जोकी मेरे दीमाग मे बसी जोकी नीम्न है।

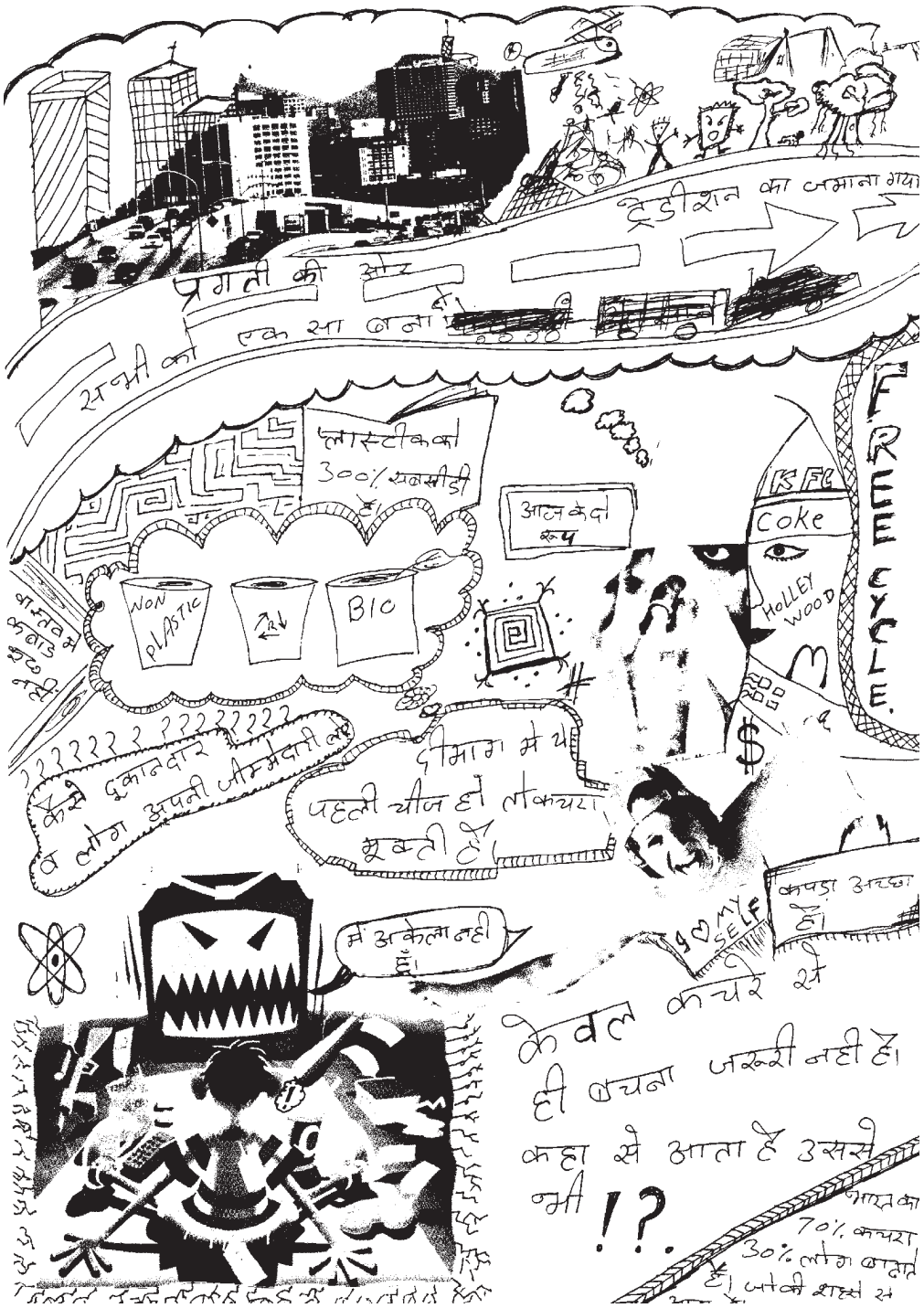

- सफाई करना ही केवल **Zero Waste** नहीं है।
- स्थानीय खेती को बढ़ावा दिया जाए और लोकल चीजों का इस्तेमाल हो।
- पारम्परिक धन्धों को बढ़ावा हो।
- शुरूआत से ही छँटाइ हो हर कचरे की।
- रसायनों का उपयोग ना हो ।
- पैकिंग के तरीकों को इको–प्रेंडली रूप में बदलना।
- मीडिया कचरा फैलाने वाले लोगों को दोश देता है, पैदा करने वालों को नहीं; इस बारे में अपनी सोच को बढ़ाना।
- बहिष्कार करना एक साधन हैं।
- एक ही उर्जा पर निर्भर ना रहना।

मेरी साउथ अफ्री का की और बातो को देखने के लीए सेपर्क करे www.berkanaexchange.net व मूज से सम्पर्क कर सकते हैं। कबाड मुक्ती की और प्रयोगो के लीए मूजे लीखे या फीर उदयपूर आकर के मेरे इस प्रयोग के साथ काम करे। व जूगाड पर व कबाड मूक्ती पर उपने वीचार लीख कर दें।

सम्पर्क पता :– धायभाई हवेली, गणेश घाटी, उदयपुर, राज.
फोन : 0294–2418510

जैसी चले नाड़ी, वैसी चले गाड़ी

जाधव गुरुजी एक पारम्परिक आदिवासी चिकित्सक हैं। आप पूना में जड़ी-बूटियों का संवर्द्धन और उनसे लोगों का इलाज करते हैं। उनसे हुई बातचीत को प्रस्तुत कर रहे हैं :-

आपने जड़ी-बूटी चिकित्सा के बारे में कैसे सीखा?

शिवाजी महाराज के समय से ही हमारे पूर्वज राजवैद्य थे। मेरे दादाजी जब 85 वर्ष के थे, तब मैं लगभग 8–9 साल का था। तभी से मैंने उनके साथ जंगल में जाना, औषधीय वनस्पति लेकर आना और औषधियॉ तैयार करना आदि काम सीखना शुरू किया। जब मैं 20 साल का हुआ, तभी दादाजी का देहान्त हो गया। लेकिन तब तक मेरी इस काम में बहुत रुचि और जिज्ञासा हो गई थी, इसलिए मैंने निरन्तर सीखना जारी रखा।

मैं एक प्राथमिक विद्यालय का शिक्षक बना। लेकिन मास्टरी के काम से ज्यादा दिलचस्पी जड़ी–बूटियों के काम में थी। दीवाली या गर्मियों के दिनों में जब भी स्कूल की छुट्टियॉ होती, मैं आसपास के गॉवों और जंगलों में जड़ी–बूटियॉ खोजने और एकत्रित करने चला जाता। वहॉ अन्य आदिवासियों से इनके बारे में पूछता। धीरे–धीरे सीखते हुए मैंने 1980 में जनसेवा दत्ताश्रम नाम से एक ट्रस्ट की स्थापना की। धीरे–धीरे आसपास के अन्य वैद्य, जो जड़ी–बूटियों के बारे में ज्ञान में रखते थे; मेरे साथ जुड़ गए।

जड़ी-बूटी चिकित्सा की क्या विशेषताएँ हैं?

जड़ी–बूटियॉ कोई दवा नहीं है, ये तो एक प्रकार का भोजन है। हमारे पारम्परिक खान–पान में षड्रस (छः रस) का समावेश होता था, जैसे कड़वा, तिक्त, मधु ...। ये छः रस हमारे भोजन को पचाने की क्रिया को आसान बनाते हैं। आजकल हमारे खान–पान में ये प्राकृतिक तत्व नहीं हैं, इसलिए भोजन पचना मुश्किल होता है और इसी कारण बहुत सारी बीमारियॉ होती हैं। तो जो चीजें हमारे लिए खाने योग्य और पचाने योग्य हैं, वे ही जड़ी–बूटी चिकित्सा में काम में ली जाती है। इन औषधियों को खाने और पचाने में हमारे शरीर को अतिरिक्त मेहनत नहीं करनी पड़ती और न ही इनका कोई दुष्प्रभाव होता है।

आप रोगों की पहचान किस तरह करते हैं?

मैं नाड़ी देखकर रोगी आदमी की प्रकृति का पता लगाता हूँ कि वो वात, पित्त, कफ, वात–पित्त, वात–कफ, कफ–पित्त या वात–पित्त–कफ प्रकृति का है। उसी के आधार पर रोग का पता लगाता हूँ और फिर उसी के अनुसार जड़ी–बूटियॉ तैयार करके उपचार करता हूँ। एलोपैथी दवाइयॉ इनमें से किसी भी प्रकृति के इंसान के लिए ठीक नहीं है। दरअसल वे आदमी के शरीर के लिए बनी ही नहीं है, बल्कि शरीर को बहुत नुकसान पहुँचाती है।

आपकी चिकित्सा व आयुर्वेद में क्या फर्क है?

जो डिग्री वाले वैद्य होते हैं, वे रेडीमेड दवाइयॉ देकर काम चलाते हैं। उन्हें औषधियों के मूल द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता। इसीलिए वे पूरी तरह कम्पनियों की दवाइयों पर निर्भर होते हैं, जिनकी शुद्धता एवं गुणवत्ता का भरोसा नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए वे अडूसे का सिरप लोगों को दे सकते हैं, लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम कि अडूसा क्या होता है, कैसा होता है, किस तरह उसका सिरप तैयार किया जाता है। वे आपको बैद्यनाथ या डाबर की छाप वाली किसी दवा को खरीदने के लिए कहेंगे। हम लोग तो खुद जड़ी–बूटियॉ उगाते हैं, जंगल से खोजकर लाते हैं और अपने हाथों से सिरप, चूर्ण, अवलेह आदि तैयार करते हैं।

आपके जीवन की कोई रोचक घटना?

एक बार हम भीमाशंकर के जंगलों में जड़ी–बूटियॉ खोजने गए। जहॉ हम रुके थे, उससे 3 किलोमीटर दूर एक बस्ती थी। वहॉ कुछ लोग शिकार करके ले जा रहे थे। जिस जगह से वे गुजर रहे थे, उस जगह का नाम था – भूतों का दर्रा। यह पहाड़ों के बीच बना एक दर्रा है। वहीं पर उन्होंने देखा कि एक पौधा अन्धेरे में भी चमक रहा था। इसे देख वे भूत समझकर डर गए। दो–तीन लोग तो घर जाने के बाद डर के मारे बेसुध हो गए। तो दूसरे दिन कुछ लोग मुझे बुलाकर लाए। मैंने पहले तो मन्त्रजाप करके उनके मन का वहम निकाला, फिर उस जगह जाने का आग्रह किया, जहॉ उन्होंने 'भूत' देखा। दिन में वो जगह देखने के बाद मैंने वहॉ रात में जाने का भी आग्रह किया। मुझे देखना था कि जो रात में चमकता है, वो कौनसी जड़ी–बूटी है। रात में हमने जाकर उसका पता लगाया। यह स्वयं–प्रकाशित पौधा है, जिसे आयुर्वेद में तृण–ज्योति और संजीवनी बूटी कहा गया है। इस बूटी के इस्तेमाल के बारे में सीखने और शोध करने में मुझे पॉच साल लग गए।

इस चिकित्सा को कोई कैसे सीख सकते है?

जिनकी वास्तव में रुचि है और वे किसी अनुभवी गुणी/हीलर या वैद्य के साथ रहकर ही सीख सकते हैं। यह भी जरूरी हैं कि साथ रहकर वे अपने हाथों से जड़ी–बूटियॉ उगाएँ और अपने हाथों से औषधियॉ तैयार करें। जब आप हर चीज को अपने हाथ से करते हैं, तभी आप उसके साथ रिश्ता बना पाते हैं। इसके साथ ही यह भी जिम्मेदारी बनती है कि जिन भी पौधों के बारे में हम जानते हैं, उनके बीजों का संकलन करें और आसपास के लोगों के साथ मिलकर इनका संवर्द्धन करें। आज के पढ़े–लिखे लोग पंखा, टीवी जैसी भौतिक सुविधाओं की मॉग करते हैं, ऐसी स्थिति में वे जड़ी–बूटी चिकित्सा की गहराई में नहीं जा सकते और उसके दर्शन को नहीं समझ सकते है। अगर सीखना है, तो जंगल में रहने, जमीन पर सोने और तमाम आधुनिक सुविधाओं के बिना रहने की तैयारी होनी चाहिए। मैंने खुद ने भी इसी तरह सीखा है। जो लोग जिज्ञासा रखते हैं और पर्याप्त समय देकर सीखना चाहते हैं, वे सम्पर्क कर सकते हैं।

सम्पर्क :– जाधव गुरुजी, जनसेवा दत्ताश्रम, एस. एन. डी. टी. कॉलेज के सामने, रेस्कॉन फैक्टरी लेन, कर्वे रोड़, पुणे फोन : 020–25439256/27485628

फिल्म समीक्षा

बावर्ची

– मनोज प्रजापत <dhakkan59@yahoo.com>

'अपना काम तो सभी करते है, लेकिन दूसरों के काम में जो खुशी मिलती है, उसका अलग ही आनन्द होता है।''

बावर्ची फिल्म में मुझे इस बात से बहुत प्रेरणा मिली। इस फिल्म से मुझे खुद का विश्लेषण करने का मौका मिला। इस फिल्म में एक परिवार की कहानी है। उस परिवार के सदस्य आपस में इतना बोलते नही हैं और उनका रिश्ता भी अच्छा नहीं होता हैं। जब भी कोई बावर्ची उनके घर काम करने आता तो वह ज्यादा से ज्यादा दस–बारह दिन मुश्किल से निकाल पाता। उस घर में ज्यादा काम एवं झगड़ा होने से कोई भी उस घर में काम नहीं करना चाहता है।

तभी एक बावर्ची उस घर में आता हैं खाना बनाने के माध्यम से उस घर को शान्ति निवास बनाने के लिए। इस फिल्म का नायक रघु (राजेश खन्ना) इस परिवार के सदस्यों के साथ इस तरह रहना शुरू करता हैं कि वह जल्द ही परिवार का एक सदस्य बन जाता हैं और परिवार के सदस्य उस पर विशवास करने लग जाते हैं और वह धीरे–धीरे उन कमजोरियों को परिवार के सदस्यों मे उजागर करता हैं जिससें उनके परिवार के रिश्तों पर बहुत असर पड़ता हैं। धीरे–धीरे उनके रिश्ते बहुत अच्छे बनते जाते है और सारे घर के काम वो खुद करना शुरू कर देते हैं।

रघु रोज बहुत अच्छा खाना बनाता है। एक दिन वह सूरन की सब्जी बनाता है और परिवार के सदस्य उसे मटन की सब्जी समझ कर खाते हैं बाद में पता चलता है कि वह सूरन की सब्जी थी। रघु बावर्ची बनने से पहले एक प्रोफेसर था। लेकिन एक दिन उसको ख़्याल आता है कि में अपने समाज के लिए क्या कर रहा हूँ? क्या मेरी जिन्दगी केवल बच्चों को पढ़ानें में ही निकल जाएगी? मैं इस समाज के लिए क्या कर रहा हूँ? जब उसने खुद पर सोचा और यह निर्णय लिया कि वह उन लोगो कि मदद करेगा जो अशान्ति से ग्रस्त हैं। वह उन छोटी–छोटी बातों एवं रिश्तों को मजबूत करेगा, जिससे अकसर किसी बड़ी खुशी को पाने की लालसा में छोटी–छोटी खुशिया मर जाती हैं।

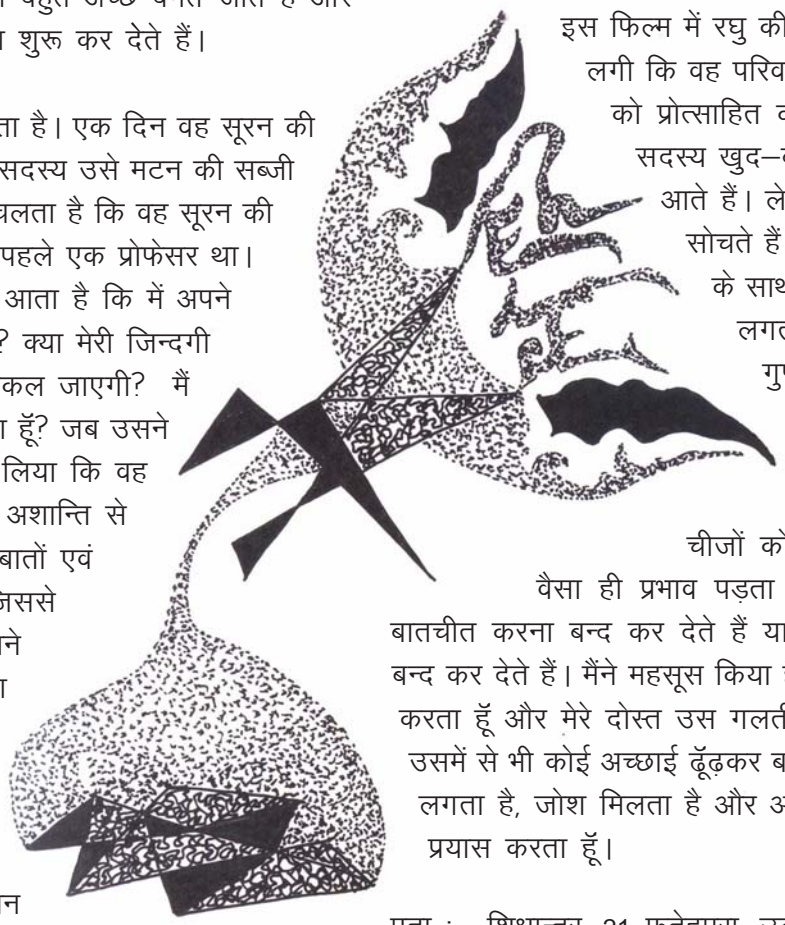

रघु के इस चरित्र से मुझे खास प्रेरणा मिलती हैं कि कैसे उसने खाने के माध्यम से आज की जीवन शैली पर प्रश्न उठाया है और मुझे यह भी समझ में आया कि माध्यम तो कुछ भी हो सकता हैं किसी चीज मे बदलाव लाने के लिए अगर हम उसे पूरी लगन एवं विश्वास के साथ करें, तो हम जरूर कामयाब होंगे।

मैं भी पिछले दो सालों से स्वास्थ्यपूर्ण खाने पर काम कर रहा हूँ। खुद के शरीर व मन को समझने की कोशिश कर रहा हूँ और देख रहा हूँ कि किस तरह तेजी से हमारा खान–पान रोजाना बदलता जा रहा है। कितनी आसानी से हम फास्ट फूड के गुलाम बनते जा रहें हैं और उसके नतीजे भी हम कई बीमारियों के रूप में भुगत रहें हैं। लेकिन मैं इस तरह का खाना नही खाना चाहता। इसलिए मैं अपने स्तर पर खाने के साथ कुछ अलग–अलग प्रयोग कर रहा हूँ। अपने शरीर को समझने की कोशिश कर रहा हूँ और अपने हुनर को बढ़ाने की कोशिश कर रहा हूँ। अपने दोस्तों के साथ अपने हुनर को बॉट रहा हूँ। मैं उदयपुर के अलग–अलग परिवारों के साथ खाना बनाता हूँ, जो वास्तव में अपनी जिन्दगी में इस प्रश्न के बारे में सोच रहे हैं कि हमें क्या खाना है और कैसे खाना है? मैं उन दोस्तों के साथ संवाद भी कर रहा हूँ, जो इन बनी–बनाई चीजों पर सोच रहे हैं। इसके साथ–साथ मुझे लगता है कि खाने के माध्यम से मैं अपने दोस्तों एवं रिश्तेदारों के साथ और गहरे रिश्ते बना सकता हूँ। इन चीजों के साथ–साथ बहुत कुछ नया भी सीख रहा हूँ।

इस फिल्म में रघु की एक और रुचिकर बात यह लगी कि वह परिवार के सदस्यों के अच्छे गुणों को प्रोत्साहित करता है, जिससे परिवार के सदस्य खुद–ब–खुद एक–दूसरे के करीब आते हैं। लेकिन आज हम कितना ऐसा सोचते हैं और अपने परिवार व दोस्तों के साथ ऐसी प्रक्रिया करते हैं। मुझे लगता है कि एक–दूसरे के अच्छे गुणों को प्रोत्साहित करना बहुत जरूरी है। क्योंकि आज ज्यादातर हम लोग एक–दूसरे की नकारात्मक चीजों को देखते हैं, जिससे उन पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। इस तरह वे आपस में बातचीत करना बन्द कर देते हैं या साथ मिलकर काम करना बन्द कर देते हैं। मैंने महसूस किया है कि जब भी मैं कोई गलती करता हूँ और मेरे दोस्त उस गलती पर व्यंग्य करने के बजाय उसमें से भी कोई अच्छाई ढूँढ़कर बताते हैं, तो मुझे काफी अच्छा लगता है, जोश मिलता है और अपनी गलती को सुधारने का प्रयास करता हूँ।

पता :– शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर

डिब्बा-बन्द खाना खाने के फायदे!

– नवीना वैंकट <thacindia@yahoo.com>

पहला झूठ :– प्रोसेस्ड एवं डिब्बा–बन्द खाद्य आज की तेज जीवनशैली से पूर्ण मेल खाता है!

बिलकुल! ऐसा खाना खाने से हम मानसिक तनाव और बदहजमी से ग्रसित होते हैं, जिससे हमें मोटापा, हृदयरोग, मधुमेह, रक्तचाप, कैंसर जैसी बीमारियों व बेशुमार दवाइयों का शिकार होना पड़ता है। ये सब आधुनिक जीवनशैली की सही निशानियॉ हैं। जो बड़े उद्योग, ऐसी चीजें बनाते हैं, वो हवा, पानी व धरती को प्रदूषित करते हैं, जिसके लिए उन्हें शाबासी देनी पड़ेगी। क्योंकि उनके कारनामों से ही आज के सारे प्राकृतिक संसाधनों व स्वास्थ्य का भरपूर शोषण हो रहा है।

दूसरा झूठ :– पहले से पका होने से समय की बचत और झॅझट से छुटकारा मिलता है!

प्रोसेस्ड एवं डिब्बा–बन्द खाना पूरी तरह से पकाया, उबाला, तला, पाश्चुरीकृत, परिरक्षित (preserved) होता है एवं पौष्टिकता की दृष्टि से बिल्कुल शून्य बन जाता है। क्योंकि उसके सारे पौष्टिक तत्व एवं एंजाइम्स मर जाते हैं। इससे समय की बचत नहीं, बल्कि हद से ज्यादा समय का दुरूपयोग होता है – समाज एवं पर्यावरण की दृष्टि से। अगर हम उसके एक पैकेट में बन्द होकर बाजार में आने तक (परिवहन सहित) की प्रक्रिया को भी देखें, तो पता चलेगा कि इसमें कितना समय व ऊर्जा बर्बाद होती है। अगर विश्वास ना हो, तो किसी भी प्रोसेसिंग यूनिट में जाकर देख लीजिए।

तीसरा झूठ :– प्रोसेस्ड खाना ज्यादा स्वच्छ होता है!

स्वास्थ्य विज्ञान (hygiene) का मतलब है – स्वयं एवं खुद के पर्यावरण की स्वच्छता की ऐसी प्रक्रियाएँ, जो हमें बीमारियों से बचा सके। वैसे तो डिब्बाबन्द एवं प्रोसेस्ड खाने में स्वाद, रंग, खुशबू, मिठास, पौष्टिकता एवं आयु बढ़ाने के लिए भरपूर केमिकल्स मिलाए जाते हैं। हमारे खाद्य मन्त्रालय ने तो करीब 3000 प्रकार के केमिकल को खाने में डालने की अनुमति दे रखी है। ऐसे केमिकल वास्तव में पर्यावरण और हमारे शरीर के लिए जहर के बराबर हैं। साथ ही उनकी पैकेजिंग कभी नष्ट न होने वाले प्लास्टिक या डिब्बों में होती है, जो बचे–खुचे खाने को भी नष्ट कर देती है। अपने घर के पास किसी कचरे के टीले को जाकर देखिए। इसमें 75 प्रतिशत कचरा ऐसे प्लास्टिक व पैकेजिंग का होता है, जो हमारी रसोई से निकलता है। तो वास्तव में हाईजीन का मतलब हो गया – कचरा + केमिकल!

चौथा झूठ :– ये इतनी किस्मों में उपलब्ध है कि सबकी जरूरतों एवं स्वाद की पूर्ति कर देता है!

ये इतनी तरह की पैकेजिंग में आता है, (जैसे – टीन, टेट्रापैक, प्लास्टिक बैग्स आदि) जिसके लिए मनमोहक विज्ञापन दिए जाते हैं। इन डिब्बों के बाहर लिखे तथ्य यह बताते हैं कि अन्दर कितने विटामिन, वसा या ताकत की चीजें हैं। शायद इन्हीं चीजों से हमारे देश का सारा कुपोषण खत्म हो जाएगा। जैसे कि हमारे खेतों व बागानों में तो कुछ होता ही नहीं है। क्या मशीनी तकनीक से बनाए खाने की बराबरी खेतों एवं घरों में बनाए खाने से की जा सकती है?

पॉचवॉ झूठ :– कुछ भी, कहीं भी, कभी भी!

खाना खाना भी एक सामाजिक, भावनात्मक एवं शारीरिक क्रिया है, जो दिन के चौबीसों घंटे लगातार नहीं की जा सकती। कोई भी जीव लगातार खाता नहीं रहता। तो क्या हमें भी लगातार खाते रहना चाहिए और वो भी डिब्बा बन्द? क्या ऐसा सड़ा–गला खाना खाने में ही हमें अपनी मेहनत की कमाई फिजूल खर्च करनी चाहिए, सिर्फ इसलिए कि कुछ भी, कहीं भी, कभी भी मिल जाता है? क्या यह खाना पौष्टिक है? क्या यह खाना सस्ता है? क्या यह पर्यावरण के लिए अच्छा है?

ये झूठ खाद्य मन्त्रालय द्वारा प्रसारित एक विज्ञापन से लिए गए हैं। इनके जवाब में 'हेल्थ अवेयरनेस सेंटर' ने उपरोक्त तथ्य प्रस्तुत किए हैं। आप भी अपने अनुभव एवं सुझाव लिखकर भेज सकते हैं।

सम्पर्क पता :– 'हेल्थ अवेयरनेस सेंटर, लोकमान्य नगर, काका साहब गाडगिल मार्ग, मुम्बई फोन : 022–24361672

आमंत्रण

स्वपथगामी पत्रिका विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के साथ संवाद करने की कोशिश है, जिसके माध्यम से हम अनुभवों का आदान–प्रदान करते हैं। हम उन सबको आमन्त्रित करते हैं, जो अपने जीवन में नए प्रयोग कर रहे हैं और सीखने के मौके बना रहे हैं।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :–
विधि जैन <vidhi@swaraj.org>
रामावतार सिंह <shikshantar@yahoo.com>
c/o शिक्षान्तर, 21 फतेहपुरा, उदयपुर – 04 (राज.)
फोन : 0294–2451303

विशेष आभार :–
मुख्य पृष्ठ चित्र : विशाल सिंह
अन्य चित्र : विशाल सिंह – पेज 2, 9, 10, सन्दीप – पेज 4, अमित – पेज 6, मानव – पेज 11
सम्पादन सहयोग : मनोज प्रजापत, शिल्पा जैन

स्व–चिकित्सा उत्सव

आने वाले कुछ महिनों में हम स्व–चिकित्सा उत्सव का आयोजन करना चाहते हैं। इस उत्सव में हम विभिन्न स्व–चिकित्सा के प्रयोग – जड़ी–बूटी चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, रेकी, शिवाम्बु चिकित्सा, पंचगव्य चिकित्सा, योग–प्राणायाम करने वाले एवं इनमें रुचि रखने वाले लोगों को आमन्त्रित करते हैं। अगर आपकी रुचि है, तो जल्द ही बताइए और अपने बारे में भी लिखिए।
सम्पर्क :– रामावतार सिंह, शिक्षान्तर